72

दल परिवर्तन कानून (Anti-Defection Law)

52वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1985 द्वारा सांसदों तथा विधायकों द्वारा एक राजनीतिक दल से दूसरे दल में दल-परिवर्तन के आधार पर निरर्हता के बारे में प्रावधान किया गया है। इस हेतु संविधान के चार अनुच्छेदों[1] में परिवर्तन किया गया है तथा संविधान में एक नयी अनुसूची (दसवीं अनुसूची) जोड़ी गई है। इस अधिनियम को सामान्यतया 'दल-बदल कानून' कहा जाता है।

बाद में 91वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2003 द्वारा दसवीं अनुसूची के उपबंधों में एक परिवर्तन किया गया। इसने एक उपबंधों को समाप्त कर दिया अर्थात अब विभाजन के मामले में दलबदल के आधार पर अयोग्ता नहीं मानी जायेगी।

अधिनियम के उपबंध

दसवीं अनुसूची में दल-परिवर्तन के आधार पर सांसदों तथा विधायकों की निरर्हता से संबंधित उपबंधों का वर्णन निम्नानुसार है:

1. निरर्हता

राजनीतिक दलों के सदस्य : किसी सदन का सदस्य जो किसी राजनीतिक दल का सदस्य है, उस सदन की सदस्यता के निरर्हक माना जाएगा—(अ) यदि वह स्वेच्छा से ऐसे राजनैतिक दल की सदस्यता छोड़ देता है अथवा (ब) यदि वह उस सदन में अपने राजनीतिक दल के निर्देशों के विपरीत मत देता है या मतदान में अनुपस्थित रहता है, तथा राजनीतिक दल से उसने पंद्रह दिनों के भीतर क्षमादान न पाया हो। उपरोक्त उपबंधों से स्पष्ट है कि कोई सदस्य जो किसी दल के टिकट पर चुना गया हो, उसे उस दल का सदस्य बने रहना चाहिए तथा दल के निर्देशों का पालन करना चाहिए।

निर्दलीय सदस्य : कोई निर्दलीय सदस्य (जो बिना किसी राजनीतिक दल का उम्मीदवार होते हुए चुनाव जीता हो) किसी सदन की सदस्यता के निरर्हक हो जाएगा यदि वह उस चुनाव के बाद किसी राजनीतिक दल की सदस्यता धारण कर लेता है।

नामनिर्देशित सदस्य : किसी सदन का नामनिर्देशित सदस्य उस सदन की सदस्यता के अयोग्य हो जाएगा यदि वह उस सदन में अपना स्थान ग्रहण करने के छह माह बाद किसी राजनीतिक दल की सदस्यता ग्रहण कर लेता है।

2. अपवाद

दल-परिवर्तन के आधार पर उपरोक्त अयोग्यता निम्न दो मामलों में लागू नहीं होती:

(क). यदि कोई सदस्य दल में टूट के कारण अपने दल से बाहर हो गया हो। दल में टूट तब मानी जाती है जब

एक-तिहाई सदस्य सदन में एक नये दल का गठन कर लेते हैं।

(ख). यदि कोई सदस्य पीठासीन अधिकारी चुने जाने पर अपने दल की सदस्यता से स्वैच्छिक रूप से बाहर चला जाता है अथवा अपने कार्यकाल के बाद अपने दल की सदस्यता फिर से ग्रहण कर लेता है। यह छूट पद की मर्यादा और निष्पक्षता के लिए दी गई है।

यहाँ ध्यान देने की जरूरत है कि दसवीं अनुसूची का प्रावधान जो विधायक दल के एक-तिहाई सदस्यों द्वारा दल तोड़ने के कारण अयोग्यता से छूट से सम्बन्धित है, 91वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2003 द्वारा हटा दिया गया है। इसका अर्थ यह हुआ कि दल छोड़ने वालों को 'टूट' (split) के आधार पर कोई सरंक्षण नहीं मिलेगा।

3. निर्धारण प्राधिकारी

दल-परिवर्तन से उत्पन्न निरर्हता संबंधी प्रश्नों का निर्णय सदन का अध्यक्ष करता है। प्रारंभ में इस कानून के अनुसार, अध्यक्ष का निर्णय अंतिम होता था तथा इस पर किसी न्यायालय में प्रश्न नहीं उठाया जा सकता था। किंतु *किहोतो-होलोहन मामले*[2] (1993) में उच्चतम न्यायालय ने यह उपबंध इस आधार पर असंवैधानिक घोषित कर दिया कि यह उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र से बाहर जाने का प्रयत्न है। अपने निर्णय में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि जब अध्यक्ष दसवीं अनुसूची के आधार पर निरर्हता संबंधी किसी प्रश्न पर निर्णय देता है तब वह एक निरर्हता की तरह कार्य करता है अत: किसी अन्य अधिकरण की तरह उसके निर्णय की भी दुष्भावना, प्रतिकूलता आदि के आधार पर न्यायिक समीक्षा की जा सकती है। किंतु न्यायालय ने अध्यक्ष के (न्याय) निर्णय करने के अधिकार के विवाद को इस आधार पर खारिज कर दिया कि यह स्वयं में राजनीतिक रूप से किसी पक्ष की ओर झुका हुआ है।[3]

4. नियम बनाने की शक्ति

किसी सदन के अध्यक्ष को दसवीं अनुसूची के उपबंधों को प्रभावी करने के लिए नियम (विनियम) बनाने की शक्ति प्राप्त है। ऐसे नियम (विनियम) सदन के समक्ष 30 दिन के लिए रखना आवश्यक है। सदन इन नियमों को स्वीकृत कर सकता है, इनमें सुधार कर सकता है अथवा इन्हें अस्वीकृत कर सकता है। इसके अलावा वह निर्देशित कर सकता है कि किसी सदस्य द्वारा ऐसे नियमों का उल्लंघन ठीक उसी प्रकार माना जाएगा जिस प्रकार सदन के विशेषाधिकारों का उल्लंघन माना जाता है।

इन नियमों के अनुसार अध्यक्ष दल-परिवर्तन को संज्ञान में तभी लेता है जब सदन के किसी सदस्य द्वारा उसे शिकायत प्राप्त हो। अंतिम निर्णय लेने से पूर्व उसे उस सदस्य को (जिसके विरुद्ध शिकायत की गई हो) अपना पक्ष रखने के मौका देना अनिवार्य है। वह इस मामले को विशेषाधिकार समिति के पास जांच के लिए भेज सकता है। अत: दल-परिवर्तन का कोई तत्काल और स्वयंमेव प्रभाव नहीं होता।

अधिनियम का मूल्यांकन

संविधान की दसवीं अनुसूची (जो दल-परिवर्तन विरोधी कानून से संबंधित है) की रूपरेखा राजनीतिक दल-परिवर्तन के दोषों तथा दुष्प्रभावों जो कि पद के प्रलोभन अथवा भौतिक पदार्थों के प्रलोभन अथवा इसी प्रकार के अन्य प्रलोभनों से प्रेरित होती है, पर रोक लगाने के लिए की गई है। इसका उद्देश्य भारतीय संसदीय लोकतंत्र को मजबूती प्रदान करना तथा असैद्धांतिक और अनैतिक दल-परिवर्तन पर रोक लगाना है। तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने इसे सार्वजनिक जीवन में सुधारों की ओर पहला कदम बताया था। तत्कालीन केंद्रीय विधि मंत्री ने कहा था कि 'यदि भारतीय लोकतंत्र की परिपक्वता तथा स्थिरता का कोई प्रभाव हो सकता है, तो बावनवें संशोधन विधेयक का दोनों सदनों में एकमत से स्वीकृत होना ही वह प्रमाण है।'

लाभ

निम्न को दल-उद्धृत विरोधी कानून के लाभ के रूप में उद्धृत किया जा सकता है:

(अ). यह कानून विधायकों की दल-बदल की प्रवृत्ति पर रोक लगाकर राजनीतिक संस्था में उच्च स्थिरता प्रदान करता है।

(ब). यह राजनीतिक दलों को दूसरे दलों में शामिल होने अथवा किसी विद्यमान दल में टूट जैसे लोकतांत्रिक तरीके से विधायिका द्वारा पुनर्संमूहन की सुविधा प्रदान करता है।

(स). ये राजनीतिक स्तर पर भ्रष्टाचार को कम करता है तथा अनियमित निर्वाचनों पर अप्रगतिशील खर्च को कम करता है।

(द). इसने विद्यमान राजनीतिक दलों को एक संवैधानिक पहचान दी है।

आलोचना

यद्यपि दल-विरोधी निरोधक कानून हमारे राजनीतिक जीवन की शुद्धता की तरफ पहला साहसिक कदम था तथा इसने देश के राजनीतिक जीवन में एक नए युग का सूत्रपात किया फिर भी इसके कार्यकलापों में कमी रही और यह दल-परिवर्तन को भी नहीं रोक पाया। इसकी निम्न आधारों पर आलोचना की जा सकती है:

1. यह असहमति तथा दल-परिवर्तन के बीच अंतर को नहीं बता पाया। इसने विधायिका को असहमति के अधिकार तथा सद्विवेक की स्वतंत्रता में अवरोध उत्पन्न किया। अत: इसने दल के अनुशासन के नाम पर दल के स्वामित्व तथा अनुमति की कठोरता को आगे बढ़ाया।[4]
2. इसका व्यक्तिगत तथा वर्गों के दल-परिवर्तन के मध्य विभेद अनुचित है। दूसरे शब्दों में, इसने छिटपुट दल-परिवर्तन पर रोक लगाई किंतु बड़े पैमाने पर होने वाले दल-परिवर्तन को कानूनी रूप दिया।[5]
3. यह किसी विधायक द्वारा विधानमण्डल के बाहर किए गए उसके कार्यकलापों हेतु उसके निष्कासन की व्यवस्था नहीं करता है।
4. इसका निर्दलीय तथा नाम-निर्देशित सदस्यों में भेदभाव अतार्किक ही है। यदि पहला किसी दल में शामिल होता है तो वह निरर्हक हो जाता है, जबकि दूसरे को इसकी अनुमति है।
5. अध्यक्ष पर निर्णय करने की निर्भरता पर इसकी दो आधारों पर आलोचना की जा सकती है। प्रथम, संभवत: वह इस प्राधिकार का राजनीतिक बाध्यताओं के कारण उद्देश्यपूर्ण तथा अभेदभावपूर्ण रूप से प्रयोग न कर पाए। दूसरे उसके पास ऐसे मामलों में न्यायनिर्णयन हेतु विधिक ज्ञान और अनुभव की कमी होती है, वस्तुत: दो लोकसभा अध्यक्षों (रविराय-1991 और शिवराज पाटील-1993) ने दल-परिवर्तन से संबंधित मामलों में न्यायनिर्णयन की अपनी उपयुक्तता पर संदेह जाहिर किया है।[6]

91वां संविधान संशोधन अधिनियम (2003)

कारण

91वें संशोधन अधिनियम (2003) को अधिनियमित करने के निम्नलिखित कारण हैं:

1. दसवीं अनुसूची में दल बदलने के विरुद्ध कानून को सख्त बनाने की माँग अनेक हलकों से होती रही है। इसका आधार यह है कि इस कानून के प्रावधान दलबदल रोकने में प्रभावी सिद्ध नही हुई है। दसवीं सूची की भी इस आधार पर आलोचना की गई है कि यह बड़े पैमाने पर दल-बदल को प्रोत्साहित करती है जबकि व्यक्तिगत दल-बदल का निषेध करती है। आयोग्यता से छूट सम्बन्धी-दसवीं अनुसूची के प्रावधानों की कड़ी आलोचना इसलिए भी हुई है कि इसका सरकार को अस्थिर करने में बड़ी भूमिका होती है।
2. चुनाव सुधार समिति (दिनेश गोस्वामी समिति) ने 1990 की अपनी रिपोर्ट, भारत के विधि आयोग ने अपनी 170 वीं रिपोर्ट, ''चुनाव कानूनों में सुधार (1999)'' तथा संविधान की कार्यप्रणाली की समीक्षा के लिए गठित राष्ट्रीय आयोग (NCRWC) ने अपनी 2002 की रिपोर्ट में दसवीं अनुसूची के उस प्रावधान को हटाने की अनुशंसा की हैं जिसमें दल-बदल के मामलों में अयोग्यता से छूट मिलती है।
3. 'संविधान की कार्यप्रणली की समीक्षा के लिए गठित राष्ट्रीय आयोग (NCRWC)' ने यह भी विचार व्यक्त किया कि दलबदलू को मंत्री पद अथवा अन्य किसी सार्वजनिक या लाभकारी राजनीतिक पद से हटाकर उसे दंडित किया जाना चाहिए। यह दंड तक तक जारी रहना चाहिए जबतक कि नये चुनाव के पश्चात नई विधायिका का गठन न हो जाए, अथवा जब तक वर्तमान विधायिका का कार्यकाल पूरा न हो जाए (दोनों में से जो भी पहले हो)।
4. 'संविधान की कार्यप्रणाली को समीक्षा के लिए गठित आयोग (NCRWC)' ने यह मत भी व्यक्त किया है कि केन्द्र में तथा राज्यों में बड़ी मंत्रिपरिषदों को गठन किया जाता रहा है। इस प्रचलन को कानून बनाकर समाप्त करना चाहिए। केन्द्र अथवा राज्य सरकारों में मंत्रियों की संख्या लोकप्रिय सदन की कुल सदस्य संख्या के 10 प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए।

प्रावधान

91वां संविधान संशोधन अधिनियम, 2003 द्वारा मंत्रिमंडल का आकार छोटा रखने, निरर्हक लोगों को नागरिक पद धारण करने से रोकने एवं दल-परिवर्तन विरोधी कानून को सशक्त बनाने के लिये निम्न उपबंध किये गये हैं:

1. प्रधानमंत्री सहित सम्पूर्ण मंत्रिपरिषद का आकार, लोकसभा की कुल सदस्य संख्या के 15 प्रतिशत से अधिक नहीं होगा (अनुच्छेद 75)।
2. संसद के किसी भी सदन का किसी भी राजनीतिक दल का ऐसा सदस्य, जो दल परिवर्तन के आधार पर निरर्हक ठहराया गया है, वह किसी मंत्री पद को धारण करने के भी निरर्हक होगा (अनुच्छेद 75)।
3. मुख्यमंत्री सहित सम्पूर्ण मंत्रिपरिषद का आकार, राज्य विधानमंडल की कुल सदस्य संख्या के 15 प्रतिशत से अधिक नहीं होगा। लेकिन मुख्यमंत्री सहित सम्पूर्ण मंत्रिपरिषद की कुल संख्या 12 से कम नहीं होनी चाहिये (अनुच्छेद 164)।
4. राज्य विधानमंडल के किसी भी सदन का किसी भी राजनीतिक दल का ऐसा सदस्य, जो दल परिर्वन के आधार पर निरर्हक ठहराया गया है, वह किसी मंत्री पद को धारण करने के भी निरर्हक होगा (अनुच्छेद 164)।
5. संसद या राज्य विधानमंडल के किसी भी सदन का किसी भी राजनीतिक दल का ऐसा सदस्य, जो दल परिर्वतन के आधार पर निरर्हक ठहराया गया है, वह किसी भी लाभ के राजनीतिक पद को धारण करने के भी निरर्हक होगा। यहां लाभ के राजनीतिक पद का अभिप्राय है-(अ) केंद्र सरकार या राज्य सरकार के अधीन ऐसा कोई कार्यालय, जिसके लिये वेतन एवं अन्य लाभ संबंधित सरकार द्वारा लोक राजस्व से दिये जाते हों या (ब) किसी निकाय के अधीन कोई कार्यालय, चाहे वह निगमित हो या नहीं, जिसका स्वामित्व पूणत: या अंशत: केंद्र सरकार या राज्य सरकार के पास हो तथा जिसके लिये वेतन एवं अन्य लाभ इस निकाय द्वारा दिये जाते हों (अनुच्छेद 361-ख)।
6. दसवीं अनुसूची के उपबंध (दल परिवर्तन विरोधी कानून) विभाजन की उस दशा में लागू नहीं होंगे, जब किसी दल के एक-तिहाई सदस्य उस विभाजित धड़े में शामिल हों। इसका अभिप्राय है कि विभाजन के आधार पर निरर्हकों के लिये कोई और संरक्षण नहीं हैं।

संदर्भ सूची

1. ये अनुच्छेद हैं-101, 102, 190 तथा 191। ये अनुच्छेद संसद एवं राज्य विधानमंडलों की सदस्यता से सीटों की रिक्तियों और निरर्हता से संबंधित हैं।
2. *किहोतो-होलोहन* बनाम *जाचिल्हू मामला* (1993)
3. न्यायालय ने कहा कि अध्यक्ष या सभापति संसदीय लोकतंत्र में अत्यंत प्रमुख पद धारण करते हैं तथा ये सदन के अधिकारों एवं विशेषाधिकारों के संरक्षक हैं। संसदीय लोकतंत्र के संचालन में इनकी भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। संविधान की दसवीं अनुसूची के अंतर्गत मामलों में इनके न्याय-निर्णयन अधिकार को अपवादस्वरूप नहीं माना जाना चाहिए।
4. सोली जे. सोराबजी-रोग की तुलना में उपचार घटिया नहीं होना चाहिये। *द टाइम्स आफ इंडिया* (संडे रिव्यू), 1 फरवरी, 1985, पृष्ठ-1
5. मधु लिमये, *कंटेपोररी इंडियन पालिटिक्स,* 1989, पृष्ठ-190
6. अध्यक्ष शिवराज पाटिल ने कहा, ''न्यायपालिका को इस प्रकार के मामलों में दिये गये लाभों के कई उदाहरण हैं। अध्यक्ष या सभापति को इस प्रकार के मामलों में विशेषाधिकार दिये जाने उचित हैं। फिर इन मामलों को यदि उच्चतम न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय में निपटाया जाता है तो वह ज्यादा उचित होगा।''